Himalayan J. Soc. Sci. & Humanities ISSN: 0975-9891
Vol. 12, (2017) 143-146

गृह्यसूत्रों में विहित यज्ञ का दीर्घायु में महत्त्व

चन्द्रशेखर भट्ट[1]* एवं विनीत घिल्डियाल[1]

[1]संस्कृत विभाग, हे.न.ब.ग.वि.वि. श्रीनगर, गढ़वाल, उत्तराखण्ड

*Corresponding Author Email: cbhatt751@gmail.com

Received: 16.08.2017; Revised: 15.10.2017; Accepted: 13.12.2017
©Society for Himalayan Action Research and Development

सारांश: गृह्यसूत्र एवं यज्ञ वैदिक धर्म, संस्कृति और चिन्तन के आधार हैं। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में यज्ञ को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है, तथापि ब्राह्मण ग्रन्थों में याज्ञिक परिकल्पनाओं और कल्पसूत्रों (गृह्यसूत्रों) में उनके विशद एवं सर्वांगीण विकास को देखा जा सकता है। भारत में यज्ञसंस्था का विकास एवं सांस्कृतिक संकल्पना के रूप में हुआ है। विद्वानों की सामान्य धारणा के अनुसार वैदिक यज्ञ आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक– तीनों रूपों में ग्रहणीय है। यज्ञप्रक्रिया ही सृष्टि की उत्पत्ति और स्थिति का आधार है। यह वह विधि है जिससे प्रकृति और प्राकृतिक जगत् में आवश्यक सन्तुलन बना रहता है।

कुंजी शब्द: गृह्यसूत्र आर्य–संस्कृति के आधार हैं, यहाँ सभी कर्म यज्ञ–मय हैं

प्रस्तावना

प्राकृतिक यज्ञ तो प्रतिक्षण चलता रहता है, अथर्ववेद में कहा है – **अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः।**[1]

अर्थात् यह यज्ञ सृष्टिचक्र या विश्व की नाभि है। इसी प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए ऋग्वेद में कहा गया है–

भूमि पर्जन्या दिवं जिन्वन्त्यग्नयः।[2]

अर्थात् यज्ञ के द्वारा भूलोक को प्रसन्न किया जाता है और द्युलोक वर्षा के द्वारा पृथ्वी को तृप्त करता है। आदान–प्रदान, स्वाहा और समर्पण आदि यज्ञ की मूल भावनाएं है।

यज्ञ शब्द की व्युप्त्ति यज् धातु से की जाती रही है, जिसके तीन अर्थ है–देवपूजा, संगतिकरण और दान। अतः परमेश्वर और प्राकृतिक तत्वों की पूजा , विविध कार्यों की सिद्धि के लिए अग्न्यादिक पदार्थों का संयोजन और विद्वानों या परमात्मा से संयोग तथा प्राणिमात्र के कल्याण के लिए स्वार्थरहित सर्मपण यज्ञ के व्यापक त्रिविध अर्थ है। यज्ञ वह शुभ कर्म है जो प्राणिमात्र के हितार्थ किया जाता है। शतपथ ब्राहमण में कहा गया है–**यज्ञों वै श्रेष्ठतमं कर्म।**[3]

अर्थात् यज्ञ संसाार का सर्वश्रेष्ठ कर्म है। श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार यज्ञ बहुत वितत है। वहां अनेक प्रकार के यज्ञ बताए गए यथा–

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः ..... प्राणायामपरायणाः।।[4]

अर्थात् जिस यज्ञ में अर्पण स्रुवा आदि भी ब्रह्म, हवन किए जाने योग्य द्रव्य, ब्रह्मरूप कर्ता के द्वारा ब्रह्मरूप अग्नि में आहुति देना, ब्रह्मरूप क्रिया तथा योगी द्वारा प्राप्त किए जाने योग्य फल भी ब्रह्म है। योगीजन परमात्मारूप अग्नि में अभेददर्शनरूप यज्ञ के द्वारा ही आत्म रूप यज्ञ किया करते हैं। योगी श्रोत्रादि समस्त इन्द्रियों को संयमरूप अग्नियों में हवनक्रिया करते हैं। और दूसरे योगी लोग शब्दादि समस्त विषयों को दसन्द्रियरूप अग्नियों में हवन किया करते हैं। योगीजन इन्द्रियों की सम्पूर्ण क्रियाओं को और प्राणों की समस्त क्रियाओं को ज्ञान से प्रकाशित आत्मा–संयमयोगरूप अग्नि में हवन किया करते हैं। कई पुरूष द्रव्यसम्बन्धी यज्ञ करने वाले हैं, कितने ही तपस्यारूप यज्ञ करने वाले हैं, तथा

दूसरे कितने ही योगरूप यज्ञ करने वाले और कितने ही अहिंसादि तीक्ष्णव्रतों से युक्त यत्नशील पुरूष स्वाध्याय रूप ज्ञानयज्ञ करने वाले है। दूसरे कितने ही योगीजन अपानवायु में प्राणवायु को हवन करते है, वैसे ही अन्य यागीजन प्राणायु में अपानवायु को हवन करते है तथा अन्य कितने ही नियमित आहार करने वाले प्राणायामपरायण पुरूष प्राण और अपान की गति को रोककर प्राणों को प्राणों में ही हवन क्रिया करते है। सभी साधक यज्ञों द्वारा पापों का नाश कर देने वाले और यज्ञों को जानने वानले है। यज्ञ की परिकल्पना वैदिक ऋषियों की सर्वोत्कृष्ट देन है। यज्ञ की उपयोगिता में बाह्य पर्यावरण के प्रदूषण से निदान जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही उल्लेखनीय है – उससे सम्भव होने वाले रोग–नाशक, दीर्घायुष्य और शारीरिक एवं मानसिक उपलब्धियां। यहां वेद–संहिताओं, गृह्यसूत्रों के आधार पर यज्ञ के आयु एवं दीर्घायु से संबंध का अध्ययन किया गया है।

ऋग्वेदीय पुरूष सुक्त के अनुसार यज्ञ प्रक्रिया सृष्टि का प्रथम धर्म है – देवताओं ने यज्ञ के सम्पादन द्वारा यज्ञस्वरूप प्रजापति का यजन किया था और वे धर्म ही प्रथम हुए थे। आज भी जो महात्मा उपासक उसी धर्म के अनुसार यज्ञ आदि कर्म करते हैं, वे उसी स्वर्ग को प्राप्त होते हैं जिसको प्रथम यज्ञकर्ता देवों ने सुप्राप्त किया था।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि .....सन्ति देवाः।।[5]

इस मंत्र में यजन, साधन और यजनीय की तादात्म्य प्रतीति से वैदिक धर्म में आध्यात्मिक उपासना का सूत्रपात हुआ है। अनन्तर आरण्यक, उपनिषद् और गीता में इस विचार का विकास होता गया। ऋग्वेदीय ज्ञान सूक्त ने ज्ञान और वाणी के सम्बन्ध पर विचार करते हुए प्रतिपादित किया है कि धीरजनों ने यज्ञ के द्वारा वाक् के यातव्य–पथ को प्राप्त किया, अनन्तर ऋषियों में प्रविष्ट उस वाक् को ढूंढ निकाला। यथा –

यज्ञेन वाचः पदवीयमयन् तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम्।[6]

ऋषि प्रदत्त ज्ञान वाणी के माध्यम से यज्ञ के द्वारा ही विद्वानों को प्राप्त हो सकता है। यज्ञ और वाक् का संबंध सेतु जैसा है। अतः ऋग्वेद में यज्ञ प्रक्रिया देवों, ऋषियों और मनुष्यों के मध्य आदान–प्रदान में यज्ञ से मनुष्य के स्वास्थ्य, नीरोगता और आयु का सम्बन्ध प्रतिपादित करते हुए, उसे कल्याण का मार्ग बताया। शुक्ल यजुर्वेद की घोषणा है कि कर्मों को करते हुए सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करनी चाहिए। यथा –

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।।[7]

मन्त्रानुकूल एक ऋचा में स्पष्ट निर्देश है – हे मनुष्य! प्रतिदिन बढता हुआ सौ वर्ष तक– सौ शरद् ऋतु तक जीवित रहे। सौ हेमन्त और सौ बसन्त ऋतु तक जी। इन्द्र, अग्नि, सविता और बृहस्पति – ये सब सौ वर्ष की आयु को देने साधन हवि (हविषा) से इनकी जीवनी–शक्ति पुनः प्रदान करें। यथा –

शतं जीव शरदो वर्धमानः ..... हविषेमं पुनर्दुः।।[8]

हविष् का शतायुष विशेषण यज्ञ द्वारा दीर्घायु प्राप्ति के ऋग्वैदिक दृष्टिकोण का प्रमाण है। अन्यत्र एक मन्त्राश मु०चामि त्वा हविष जीवनाय।[9] से निरोगता और दीर्घ जीवन के लिए हविर्द्रव्य की उपयोगिता से यज्ञ और आयु के अनिवार्य सम्बन्ध का तथ्य प्रकट होात है। इन्द्राग्नी, आयुष्य और यक्ष्मनाशन को विषयीकृत करने वाले – आठ मन्त्रों के अथर्ववेदीय सूक्त–3–11 में हवन से दीर्घायुष्य प्राप्ति का निर्देश मिलता है और आरोग्य, बल दीर्घ जीवन की प्राप्ति के लिए यज्ञ–यागों की शक्ति एक समाधि की चर्चा की गई है।

यजुर्वेद में अग्निदेव से मन, आयु, प्राण, आत्मा, चक्षु, श्रोत्र आदि की प्राप्ति की प्रार्थनाओं का यज्ञविधान से इष्ट कामनाओं की पूर्ति का विवरण ही है यथा–

पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन्पुनः प्राणः पुनरात्मा ..... पातु दुरितादवद्याता।।[10]

इसी का विस्तार उस यजुष् में बलिष्ठ हो, यज्ञ से नेत्र उत्कृष्टता को प्राप्त हो, यज्ञ से इन्द्रिय उत्कृष्टता को प्राप्त हो। मन, आत्मा भी उत्कर्ष को प्राप्त हो, यज्ञ से श्रोत्र इन्द्रिय उत्कर्षता को प्राप्त हो। यज्ञ से स्वयं प्रकाश परमात्मा प्राप्त हो, यज्ञ से स्वर्ग प्राप्त हो यथा –

आयुर्यज्ञेन कल्पतां ..... मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पताम्।।[11]

यज्ञ से अग्नि का साक्षात् सम्बन्ध है। अग्नि तत्त्व की प्रधानता जीवनी शक्ति का सार है अतः यज्ञकर्म शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों का संपोषक मानना तत्वतः वैज्ञानिक दृष्टि से प्रेरित विचार है। वैदिक संहिताओं में यत्र–तत्र इस तथ्य को विविधतया प्रस्तुत किया है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में अग्नि को सम्बोन्धित करते हुए जीवन–शक्ति, सामर्थ्य, पुष्टि और इससे समवेत आयुवय का आधार जातवेदस् में प्रतिदिन समिधाएँ प्रदान करना कहा गया है यथा –

स घा यस्ते ददाशति समिधा ..... सूवीर्यं स पुष्यति।।12

अथर्ववेद में दीर्धायु प्राप्ति के उपायों के प्रकाशक सूक्त प्राप्त होते हैं। जिनका देवता आयु है।[13] अथर्ववेदन के उन्नीसवें काण्ड में प्राप्त 'दीर्घायुष्त्वम्' सूक्त का देवता सूर्य है, इसमें सौ वर्ष तक देखने जीवित रहने, पुष्ट रहने की कामना व्यक्त की गई है। पश्येम शरदः शतम्। जीवेम शरदः शतम्[14] एक मन्त्र में इन्द्रिय–शक्तियों, प्राण और तेज के साथ आयु की अविच्छिन्नता के लिए यज्ञ की गरिमा का गुणगान किया है – "मन लगाकर' दैवी शक्तियों के साथ घी की अविच्छिन्नता रहे, आयु और तेज से हम अविच्छिन्न रहें –

घृतस्य जूतिः ..... वयमायुषो वर्चसः।15

ऋषि वशिष्ठ की प्रार्थना है कि 'गो के समान शब्द करने वाला, अज के समान है शब्द करने वाले, हरित वर्ण वाले, चितकबरा आदि सभी प्रकार के मण्डूक हमें धन दें और सहस्रसाव' वर्षा ऋतु आने पर गायों को सैकड़ों की संख्या में देते हुए हमारी आयु बढ़ायें –

गोमायुरदादजमायुदात् .....प्रतिरन्त आयु।।16

याज्ञिकों के समकक्ष गुणों और कर्म से प्रशंसित मण्डूकों से आयु वृद्धि की कामना इस ऋग्वैदिक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त कर रही है कि यज्ञ का आयु से निश्चित सम्बन्ध है और विधिपूर्वक किये जा रहे यज्ञयागादि आयुष्यलाभ करने में समर्थ हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक मन्त्रों यज्ञ और आयु का सम्बन्ध अनेकशः दर्शाया गया है। यज्ञदर्शन एवं यज्ञविज्ञान की दृष्टि की सूक्ष्म मीमांसा वैदिक संहिताओं का विषय नहीं है पर यज्ञ के ज्ञान, प्राण, वाक् और अग्नि से सम्बन्ध की गवेषणा वैदिक मन्त्रों में हुई है और इसी आधार आयुष्य और जीवनी शक्ति की सिद्धि यज्ञ से संयुक्त की गई है। यज्ञों की परम्परा का विकास और अनन्तर उसके दार्शनिक एवं आध्यात्मिक स्वरूप का अनुचिन्तन भी वस्तुतः संहिताओं से ही प्रारम्भ हो गया था। उसमें परिवर्धन एवं परिवर्तन होते रहे– पर मूलाधार वही रहा। यज्ञों की परम्परा भारतीय चिन्तन की सार्वभौम परम्परा है, इसीलिए यज्ञ से दीर्घायु के सम्बन्ध की स्थापना भी सर्वप्रथम वैदिक ऋषियों द्वारा संहिताओं में ही की गयी है। वैदिक वाङ्यमय अनन्तर यज्ञविज्ञान के प्रयोजन और उद्देश्य में आयुष्य को सर्वोप्परि स्थान दिया गया। गृह्यसूत्रों में सभी संस्कार एवं कर्म यज्ञमय हैं, यज्ञविहीन कोई भी क्रिया नहीं है, एवं प्रतिदिन विभिन्न यज्ञों को करना विहित किया गया है।[17]

सायमाहुतिसंस्कारोंऽध्वर्युप्रत्यय इत्याचार्याः[18],

प्रातः पूर्णाहुतिं जुहुयाद्वैष्णव्यर्चा तूष्णीं वा[19]

इसी प्रकार अन्यान्य गृह्यसूत्रों में भी यज्ञ–विधान विहित हैं, जिससे अन्यान्य लाभों के साथ दीर्घायुष्य–लाभ भी निर्विवादेन होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :–

1. अथर्ववेद 9.15.14
2. ऋ. 1.164.51
3. श.ब्राऋ 1.7.1.5
4. गीता 4.24–29

5. ऋ. 10.9.16
6. ऋ. 10.71.3
7. यजु. 40.2
8. ऋ. 10.161.4
9. ऋ. 10.16.1
10. यजु. 4.15
11. यजु. 18.29
12. ऋ. 3.10.3
13. अथवेवेद 5.28.1, 1.35.1
14. अथवेवेद 19.67.1.8
15. अथवेवेद 19.58.1
16. ऋ. 7.103.10
17. आश्व. गृ.सू. 3.1.4
18. शांखा, गृ.सू. 1.1.10
19. शांखा, गृ.सू. 1.1.11

****